INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS

Volume 4, Issue 7, July 2016 ISSN: 2320-2882 (Online)

ORIGINAL ARTICLE

Impact Factor: 0.345(GIF)

www.ijcrt.net

मोक्ष प्राप्ति में कर्मयोग साधना की भूमिका

डॉ० जी०डी० शर्मा

विभागाध्यक्ष, योग विज्ञान विभाग, पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार

हिमांशु

शोध छात्र, योग विज्ञान विभाग, पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार

शोध–सार

भारतीय आध्यात्मिक चेतना मोक्ष अथवा मुक्ति की अवस्था को परम पद, परमलक्ष्य, परमानंद की संज्ञा देती है। मोक्ष प्राप्ति के अनेक साधनों (उपायों) पर भारतीय शास्त्रों एवं सद्ग्रंथों में विषद एवं व्यापक चर्चाएँ प्राप्त होती हैं। इसी श्रृंखला में कर्मयोग साधना मार्ग व्यैक्तिक व लोक कल्याण की दृष्टि से अनुपम एवं अनुपालनीय पथ है। सामान्य ग्रहस्थ व्यक्ति कर्म के परिणाम (फल) से निःस्पृह होकर स्वयं के दायित्व कर्मों को सम्पादित कर मोक्ष अथवा परमानन्द की स्थिति को उपलब्ध हो जाता है। ऐसा मंतव्य एवं निष्काम कर्मों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन हमारी ऋषि प्रणीत आध्यात्मिक धरोहर पारम्परिक एवं शास्त्रीय ग्रन्थों में संपुष्टित, संग्रहित एवं संरक्षित है।

इस शोध पत्र द्वारा मानवोत्कर्ष एवं 'आत्मवत् सर्वभूतेषू' की भावना से युक्त कर्म योग की साधना का मोक्ष प्राप्ति सम्भव भारतीय आध्यात्मिकचिंतन पर प्रकाश डाला गया है।

मुख्य शब्द : मोक्ष, कर्मयोग, साधना।

परिचय

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय मनीषा का शिरोमणि ग्रंथ है यह महाभारत के भीष्म पर्व में अध्याय 23 से अध्याय 40 तक प्राप्त है। इसे वेदान्त दर्शन का सार कहा जाता है इसलिए यह ग्रन्थ अत्यन्त समादरणीय है। यह गोपालनन्दन श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को बछड़ा बनाकर उपनिषद् रूपी गायों से दुहा गया अमृतमय दूध है जिसे सुधीजन पीते हैं।[1] गीता आध्यात्मिक एवं व्यवहारिक जीवन का समान भाव से पोषण करती हैं।

लोकमान्य तिलक ने श्रीमद्भगवद्गीता को कर्मयोगशास्त्र की संज्ञा दी है भागवत धर्माभिमत प्रवृतिमार्ग को गीता का अंतिम सत्य तथा कर्मयोग को उसका साधन बताया है। **श्रीमती एनी बेसेन्ट** के अनुसार गीता साधक को संन्यास के उस निम्न स्तर से जहाँ पदार्थों का तथा कर्मों का त्याग किया जाता है, निष्काम कर्मयोग के उस सर्वोच्च स्तर पर

ले जाती है, जहाँ सर्व कामनाओं और आसक्तियाँ विलीन हो जाती हैं और जहाँ योगी समाधिस्थ होते हुए भी शरीर और मन से लोककल्याण के लिए विदेहमुक्त रहकर कार्य करते हैं।[2]

गीता रचनाकार ने योग की विभिन्न धाराओं का निरूपण करते हुए बतलाया है की प्रत्येक व्यक्ति की प्रवृति के अनुसार उसके द्वारा योगमार्ग का चुनाव किया जाता है और मानव–मात्र के परमलक्ष्य मुक्ति का वरण किया जाता है। गीता में योग मार्गों का समन्वय लोक कल्याण की भावना रूप में देखने को मिलता है जिन्हें निम्नरूप में सुस्पष्टार्थ उद्धृत करना उचित है–

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे।।
अन्येत्वेवमजानन्तः श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्यत्येव मुत्युं श्रुति परायणः।।[3]

मनुष्य प्रकृति द्वारा प्रदत्त विभिन्न तत्त्वों का संघटन हैं। इसलिए वह भी क्रिया रिक्त नहीं रह सकता। कर्म करना मानव की बाध्यता है। प्रकृति से उत्पन्न गुणों के अनुसार ही प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ कर्म करना होता है। इसका प्रमाण गीता के निम्न श्लोक से मिलता है–

न हि कश्चित्क्षणमपि जातुतिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवश कर्मः सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।[4]

मनुष्य कर्म के शक्ति से ही परम सत्ता तक पहुँच सकता है इसलिए उसे निश्चित रूप से कर्म करने की आवश्यकता है अगर वह कर्म नहीं करेगा तो उसके शरीर का निर्वाह भी सम्भव नहीं होगा। इसलिए गीता में निम्न श्लोक के माध्यम से कहा है–

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः।।[5]

उपर्युक्त मत का प्रमाणीकरण मनु ने भी निम्न श्लोक के द्वारा किया है–

विदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्याद तब्दितः।
तद्धि कुर्वन यथाशक्तिं प्राप्नोति परमां गतिम्।।[6]

उपनिषदों में भी सौ वर्ष तक सम्पूर्ण जीवन में कर्म करने का आवाहन किया है।

कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविषेच्छतः समाः।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।[7]

कर्म से सांसारिक सम्बन्ध दृढ़ होते हैं। मनुष्य अपने स्वभाव का अनुगमन करता है। कर्म–अकर्म मनुष्य की दुर्बलता है। धर्म क्या है? इसका भी ज्ञान है अधर्म क्या है? इसका भी ज्ञान है, पर हम धर्म अधर्म दोनों को ही किया करते हैं, अतः कहा गया है–

जानामि धर्म न च मे प्रवृत्ति, जानाम्यधर्म न च मे निवृत्तिः।[8]

मीमांसा की दृष्टि में निरर्थक ज्ञान–काण्ड की अपेक्षा सार्थक कर्मकाण्ड श्रेयष्कर है। मीमांसाकार जैमिनी इसके पक्षधर हैं उन्होंने कहा है कि वेद का प्रमुख उद्देश्य कर्म का प्रतिपादन है। ज्ञान काण्ड तो व्यर्थ है। निम्नलिखित सूत्र उपरोक्त कथन के भाव को स्पष्ट कर्ता है–

आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थवमतदर्थानाम्।।[9]

सुख सुविधाओं का एकत्रीकरण कर्म के द्वारा होता है परन्तु इसे लक्ष्य नहीं माना जा सकता है। इसी कारण वश गीता अनासक्त भाव से मनुष्य को कर्म करने की प्रेरणा देती है। उपनिषद् भी इसी मत की सम्पुष्टि करते हैं। अतः कहा गया है न कर्म से, न प्रज्ञा से, न धन से, न परम उत्सर्ग से शाश्वत जीवन की प्राप्ति सम्भव है। सम्बन्धित उपनिषद् की निम्नलिखित पंक्ति के द्वारा उपरोक्त कथन को स्वीकृति प्रदान होती है–

न कर्मणा, न प्रजया धनेन त्यागेनैक अमृतत्वमानशुः।।[10]

गीता का कहना है कि मानव–निर्मित जीवन के लिए कर्म नितान्त आवश्यक है। इससे ही व्यक्ति की संसार से सम्बन्ध की स्थापना होती है। परन्तु, मानव की महत्वाकांक्षा आध्यात्मिक सुख प्राप्ति के लिए होती है। भौतिक पदार्थों का संचयन व उपभोग से इसकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। वसुधेव कुटुंबकम की भावना गीता का आधारभूत सिद्धान्त है।

गीता में कर्म शब्द का प्रयोग वर्णों के निर्धारित कर्तव्यों के लिए ही हुआ है। नियत कर्त्तव्यों का पालन ही मोक्ष का उपाय है, जिसकी सम्पुष्टि निम्न श्लोक से हो जाती है–

ब्राह्मणक्षत्रियविशां श्शूद्राणाश्च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तितानि स्वभाव प्रभवैर्गुणैः।।[11]

कर्म का सम्पादन अव्यक्त प्रकृति एवं उससे उत्पन्न हुए गुणों से ही संपादित होता है अज्ञान एवं मिथ्या ज्ञान के कारण मानव अपने आप को कर्ता मान लेता है जो उचित नहीं है। इसका प्रमाण गीता के निम्न श्लोक से मिलता है–

प्रकृते क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।

अहंङ्कारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते।।[12]

मानव देह प्रकृति प्रदत्त है। इसी शरीर के माध्यम से सारे कर्म सम्पादित होते हैं। मानव देह ऐसा करने के लिए बाध्य है। इसमें आत्मा परतंत्र नहीं है। जो ऐसा देखता है वही वास्तव में देखता है। इसका प्रमाण गीता के निम्न श्लोक से मिलता है–

प्रकृत्यैव व कर्मानि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानमकर्त्तारं स पश्यति।।[13]

गीता के अध्ययन से सुस्पष्ट होता है कि शरीर, कर्ता, विभिन्न इन्द्रियाँ, चेष्टाएँ, एवं परमात्मा कर्म के पाँच कारण है। इसका कथन की स्वीकृति गीता के निम्न श्लोक से मिलती है–

अधिष्ठानं तथा कर्ता कारणश्च पुथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पश्चमम्।।[14]

इस स्थिति को जो अशुद्ध बुद्धिवाला मनुष्य शुद्ध रूप आत्मा को कर्ता मानता है वह मलिन बुद्धिवाला अज्ञानी यथार्थ नहीं समझता।[15]

कर्त्ता ही कर्म का फल भोग करता है। इससे मुक्ति नहीं मिल सकती फिर भी गीता में ही कर्म के बन्धन से मुक्ति हेतु एक समाधान बतलाया गया है, वह युक्ति कर्म योग है। कुशलता से सम्पादित कर्म बन्धन मुक्त हो सकता है। अतः कहा गया है–

योगः कर्मसु कौशलम्।।[16]

गीता के मतानुसार कर्म संन्यास से बढ़कर कर्मयोग है। मुक्ति प्राप्ति हेतु कर्म का त्याग तथा कर्मयोग दोनों ही श्रेयष्कर हैं किन्तु कर्म के त्याग की अपेक्षा कर्मयोग श्रेष्ठतर है। अतः कहा गया है–

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेसकरानुसौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते।।[17]

कर्म करने का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को है परन्तु फल के सम्बन्ध में कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। फलाकांक्षा तथा कर्म के अभिमान अर्थात् कर्तापन का भाव का त्याग करना अपेक्षित है। ऐसा कर्म इश्वर को अर्पित कर देना चाहिए। इस हेतु गीता में निम्न श्लोक की प्रस्तुत की गई है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।[18]

कुछ विद्वानों ने काम्य कर्म अर्थात् फलभोग की कामना से युक्त कर्मों के त्याग को संन्यास कहा है। किन्तु गीता की दृष्टि में समस्त कर्मों के फल का त्याग ही संन्यास है। कर्त्तृव्य के अभिमान को त्याग कर और अनासक्त भाव से मनुष्य को कर्म करना चाहिए ऐसा गीता का संदेश है।

गीता के दृष्टिकोण में किसी भी कर्म के सम्पादन में मनुष्य देह एक निमित्त मात्र है जिसका उद्देश्य निष्काम कर्म है। निष्काम कर्म से आत्म लाभ और ईश्वर का साक्षात्कार होता है। कर्मयोग की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि ब्राह्मी स्थिति है। इसके द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः कहा गया है–

एषां ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनो प्राप्य विमुञ्चति।
स्थितवास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।।[19]

ईश्वर की अनुभूति भी ब्राह्मी रूप में बतलायी गयी है। गीता में श्रीकृष्ण जीवन के अन्त में मात्र ईश्वर का स्मरण करते हुए देह त्याग करने का आदेश देते हैं। गीता के निम्नलिखिल श्लोक इसकी पुष्टि करता है–

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुखक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स सद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।[20]

गीता में प्रतिपादित भगवद् प्राप्ति के समस्त साधनों में कर्मफल–त्याग–रूपी निष्काम–कर्मयोग सर्वातिशायी एवं सर्वोत्क्रष्ट है। मनुष्य सर्वकर्मफल को ईश्वर को समर्पित कर अनासक्त भाव से परम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यह ब्राह्मी स्थिति मोक्ष साधना का सहज एवं श्रेष्ठ मार्ग है। अतः कहा गया है–

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिषमि मा शुचः।।[21]

श्रीमद्भगवद्गीता के अध्ययन से सुस्पष्ट है कि ज्ञान, कर्म, भक्ति, प्रेम एवं ध्यान समस्त साधना मार्ग मानव जीवन का लक्ष्य सर्वोपरि सत्ता के साथ साक्षात्कार करना है। गीता में भक्ति मार्ग की श्रेष्ठता का प्रतिपादन कर भगवद् प्राप्ति के लिए निष्काम–कर्मयोग की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। दीन दुखियों की सेवा से भी सर्वोपरि ईश्वरीय सत्ता से ऐक्य की स्थापना सम्भव है।

आध्यात्मिक यथार्थ की प्राप्ति का मूलभूत ज्ञान आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि रूपी ज्ञान से भिन्न है। मोक्ष एक अनुभव है। विभिन्न मार्गों के दर्शन का उद्देश्य भगवद् दर्शन है। यथार्थ

अथवा मोक्ष की अनुभूति के लिए विभिन्न मार्गों का आश्रय लिया जाता है यदि मुमुक्षु न मन को अचल रूप में स्थापित कर सकता है, न ही अभ्यास कर सकता और न ही मेरे पारायण होकर सत्कर्म कर सकता है ऐसी अवस्था में मन बुद्धि पर विजय प्राप्त करने वाला होकर समस्त कर्मों के फल का त्याग करना ही श्रेयस्कर है।[22] गीता के अध्ययन से स्पष्ट है कि अभ्यास की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ है एवं ज्ञान की अपेक्षा ध्यान श्रेष्ठ है। ध्यान से कर्मफल का त्याग श्रेष्ठ है तथा कर्मफल के त्याग से शान्ति की उपलब्धि होती है।

मोक्ष मानव जीवन में सर्वश्रेष्ठ अनुभूत तथ्य है। श्रम एवं साधना से इसी प्राप्ति सम्भव है। सम्भावना संकल्प एवं सतत् चेष्टा से ही यह प्राप्त हो सकता है। मोक्ष पाने की कला जीवन का लक्ष्य है।

परमात्मा से आत्मा का संयोग ही मोक्ष है। मुक्ति, ब्राह्मी स्थिति, नैष्क्रम्य, निस्त्रैगुण्य, कैवल्य, ब्रह्मभाव, प्रभृति इत्यादि इसके विभिन्न नाम हैं। यह असाधारण अनुभूति है। आत्मज्ञान की पूर्णता ही प्रतिष्ठा, आनन्द, अमृत, मुक्ति अथवा मोक्ष है। इससे ही जीवन सार्थक एवं कृतार्थ होता है। इस आत्मानुभूति में समस्त विश्व की एकता का अनुभव होता है।[23]

गीता कार कहते हैं कि कर्मयोगी कर्म संन्यास का प्रेमी नहीं होता बल्कि अनासक्त कर्म के प्रति आस्थावान रहता है। वह अनासक्त होकर कर्म करता है। अनासक्त कर्म करने वाला योगी ही ब्रह्म स्थिति तक पहुँच सकता है। गीता निम्न श्लोक के माध्यम से इसका समर्थन करती हुई प्रतीत होती है–

तस्मादसक्तः सततं कार्य कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः।।[24]

गीता में मुक्ति के उपरान्त भी कर्म सम्भावना को बतलाया गया है। अन्तर्दृष्टि एवं ज्ञान से सम्पन्न व्यक्ति ब्रह्म का अनुसरण करते हुए संसार में कार्यरत हैं। गीता इसका समर्थन करती है।[25] मुक्त पुरुष की आत्मा विदेह भाव में केन्द्रित रहती है फिर भी उनका निजी व्यक्तित्व बरकरार रहता है। इन्हें दिव्य आत्मा का अंश कहा जाता है। जैसे पुरुषोतम समस्त विश्व में व्याप्त होकर कर्म करता है। उसी प्रकार मुक्त आत्मा को भी कर्म करना चाहिए। सर्वोच्च अवस्था पुरुषोत्तम में निवास करने की अवस्था है।[26]

मुक्त पुण्य पाप से परे होते हैं। गीता के अध्याय से स्पष्ट होता है कि मुक्त आत्माएँ ईश्वर नहीं बन सकते। लेकिन जो इस स्थिति में आ जाते हैं उनका पुनर्जन्म रुक जाता है

मोक्ष में व्यक्ति का व्यक्तित्व विलुप्त नहीं होता है परन्तु जीवात्मा की मुक्ति और ईश्वर का सामीप्य उसे प्राप्त होता है।

गीता के पाठ से सुस्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ में मुक्ति से सम्बन्धित विरोधी चिन्तन देखने को मिलते हैं। गीता का कहना है कि मानव के अन्दर एक दैवी शक्ति है। गीता के अनुसार अमूर्त ब्रह्म एवं शरीरधारी पुरुषोत्तम एक ही है। मोक्ष मानव जीवन का पुरुषार्थ है। जीवन का एक मात्र लक्ष्य मुक्ति की प्राप्ति करना है और कर्मयोग को इसका महत्वपूर्ण साधन के रूप में प्रस्तुत किया है।

संदर्भ सूची

1. सर्वोपनिषदों गावो दोग्धा गोपालनन्दनः। पार्थो वत्सः सुधीभोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

गीता ध्यान श्लोक – 4

2. श्रीमद्भगवद्गीता – 3/20
3. श्रीमद्भगवद्गीता – 13/24–25
4. श्रीमद्भगवद्गीता – 3/5
5. श्रीमद्भगवद्गीता – 3/8
6. मनुस्मृति – 4/140
7. यजुर्वेद – 40/2
8. महाभारत, शांति पर्व।
9. मीमांसा सूत्र, 1/21
10. महावराहोपनिषद् – 4/15
11. श्रीमद्भगवद्गीता – 18/41
12. श्रीमद्भगवद्गीता – 3/27
13. श्रीमद्भगवद्गीता – 13/29
14. श्रीमद्भगवद्गीता – 18/14
15. श्रीमद्भगवद्गीता – 18/16
16. श्रीमद्भगवद्गीता – 2/50
17. श्रीमद्भगवद्गीता – 5/2
18. श्रीमद्भगवद्गीता – 2/47

19. श्रीमद्भगवद्गीता – 2/72

20. श्रीमद्भगवद्गीता – 8/5

21. श्रीमद्भगवद्गीता – 18/66

22. अय चित्तं समाधातुं न शक्नोति मयि स्थिरम।
अभ्यासयोगेन ततो ममिच्छाप्तु धनञ्जय।।
अभ्यासोऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्म परमो भव।
मदर्थमपि र्मिाणि कृर्वन सिद्धिमवाप्ष्यसि।।
अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्त्तु मधोगमाश्रितः।
सर्व कर्मफन त्याग्र मतः कुरू यतात्मवान्।। श्रीमद्भगवद्गीता, 12/9–11

23. श्रीमद्भगवद्गीता, 6/29

24. श्रीमद्भगवद्गीता, 3/19

25. श्रीमद्भगवद्गीता, 4/14–15

26. श्रीमद्भगवद्गीता, 12/8